मैंने कल लक्षित किया कि एक पुलिस अधिकारी हमेशा हमलोगों के साथ चल रहा था। मैं यह कहना चाहता हूँ कि हमारे सभी काम बिल्कुल खुलेआम होते हैं और इसलिए अपनी ओर से तथा अपने सहकर्मियों की ओर से मैं कहना चाहूँगा कि हम सभी अपने काम के क्रम में पुलिस की यदि सहायता नहीं तो उपस्थिति का स्वागत करेंगे। मैजिस्ट्रेट ने इस पत्र के जवाब में गाँधीजी को सूचित किया कि उन पर धारा 108 के तहत भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अभियोग लगाया जायेगा और एक सम्मन तामील किया जायेगा तथा उन्हें मोतिहारी छोड़कर कहीं नहीं जाना होगा। महात्मा गाँधी ने अविलम्ब मैजिस्ट्रेट को सूचित कर दिया कि आपके आज के पत्र के उत्तर में मुझे कहना है कि मैं सम्मन की प्रतीक्षा में रहूँगा और मैं मोतिहारी में ही रहूँगा।

महात्मा गाँधी की चम्पारण यात्रा एवं यहाँ का उनका काम बिहार के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत के इतिहास में कई दृष्टिकोणों से सर्वाधिक महत्व रखता है। उनकी अपनी धारणा के अनुसार यह ''सत्य और अहिंसा का एक महान प्रयोग था।'' जहाँ तक चम्पारण के रैयतों का संबंध था, महात्मा गाँधी के प्रयत्न से उन्हें एक अन्यायपूर्ण अत्याचारी व्यवस्था से मुक्ति मिली। लम्बे अरसे से जो भारी सामाजिक अन्याय उनके साथ हो रहा था उसके शिकंजों से भी वे मुक्त हुए। इसका उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने निर्भिकता एवं ईमानदारी का आदर करना सीखा। आगामी दशकों में स्वतंत्रता संघर्ष के दरम्यान जो अग्नि परीक्षा उन्हें देनी थी उसकी भूमिका प्रस्तुत हुई। नागरिक स्वतंत्रता की पहली सीख भी इसी आंदोलन से चम्पारण वासियों एवं पूरे देश को मिली।

संदर्भ सूची :

1. डी.जी. तेंदुलकर, महात्मा, खंड–1, पृ. 241–242 में उद्धृत।
2. के.के. दत्त, बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, भाग–1, पृ.182–206।
3. दरभंगा के बाबू ब्रज किशोर प्रसाद के साथ लक्ष्मण प्रसाद, भुवनेश्वर मिश्र, कमेश्वरी चरण सिन्हा और राम बहादुर प्रसाद गुप्त थे।
4. 21वीं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की रिपोर्ट, पृ. 68।
5. आत्मकथा, पृ. 494।
6. वही, पृ. 502।
7. राजेन्द्र प्रसाद, सत्याग्रह इन चम्पारण, पृ. 105।
8. आत्मकथा, पृ. 502।
9. वही, पृ. 503।
10. वही, पृ. 504।
11. वही, पृ. 503।
12. राजेन्द्र प्रसाद, सत्याग्रह इन चम्पारण, पृ. 110।

प्राचीन काल में आन्तरिक व्यापार

डॉ. विजय कुमार*

आन्तरिक व्यापार – गुप्तयुगीन आंतरिक व्यापार 'श्रेष्ठि', 'सार्थवाह', 'कुलिक' और निगम के माध्यम से संगठित और व्यवस्थित होता था। विभिन्न वस्तुएँ क्रय और विक्रय को जाती थी तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाती थी। ऐसे व्यापारी जो अपनी वस्तुओ को घोड़ो, बैलो या अन्य पशुओं अथवा रथो पर लादकर समूह में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैदल जाते–आते थे तथा क्रय–विक्रय करते थे, 'सार्थ' के नाम से विख्यात थे। कभी–कभी उन्हें 'सांगात्रिक' भी कहा जाता था। उन व्यापारियों के नेता को 'सार्थवाह' के नाम से अभिहित किया गया था, जो व्यापारियों के समूह को नेतृत्व प्रदान करता था। 'सार्थ' में सम्मिलित होकर चलनेवाले व्यापारियों के बीच पारस्परिक मतैक्य होता था तथा हानि–लाभ के लिए सभी समान रूप से भागीदार होते थे और नियमों के अनुसार आबद्ध रहते थे। सार्थ में पाँच प्रकार के लोग होते थे– (1) मंडी– सार्थ (व्यापारिक सामान और माल लादकर सम्मिलित होने वाले व्यापारी) (2) 'वह्लिका' (घोड़े, बैल, ऊँट आदि वाहन), (3) भारवाह (माल ढ़ोनेवाले लोग), (4) औदारिका (आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान जानेवाले लोग) और (5) कार्पटिक (साधु और भिक्षु)। उस युग में बाजार को 'विपणि' की संज्ञा दी गई थी, जहाँ क्रय–विक्रय के लिय अनेकानेक वस्तुएँ इकट्ठी होती थी।[1] लोहे को तपाकर अनेक वस्तुएँ बनाई जाती थी, जिनकी माँग समाज में बराबर हुआ करती थी।[2] अनेक प्रकार के अस्त्र भी बिकते थे। इन अस्त्रो का उल्लेख प्रयाग प्रशस्ति जैसे अनेक अभिलेखों और साहित्यों में हुआ है।[3] क्रय करने के लिए 'निष्क्रय' शब्द का व्यवहार किया जाता था। पण्यवीथी (सड़क) के दोनो ओर दूकाने रहा करती थी, जिनमें समाज के उपयोग की विविध वस्तुएँ बिका करती थी।[4] 'अमरकोश' में सड़क के दोनों ओर की दूकानों का उल्लेख हुआ है।[5] भीटा के उत्खनन में गुप्तयुगीन जो अवशेष मिले है, उनमें सड़के है, जिनके दोनों ओर दुकानें है। रधुवंश में विवृत है कि अयोध्या के बाजारों के लोग विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का क्रय–विक्रय करते थे और तत्पश्चात् नावों से सरयू के उस पार जाते थे अथवा नदी के किनारे–किनारे जाते थे।[6]

पूर्वमध्य युग में भी व्यापार का विस्तार पूर्वरत् था। व्यक्ति की आवश्यकताओं की विभिन्न वस्तुएँ उत्पादित की जाती थी, जिन्हें बाजारो और हाटों में लाकर बेचा जाता था। श्वानच्वांग ने समकालीन भारतीय व्यापार और वाणिज्य का चित्रण

***ग्राम+पोस्ट–मछली, सकरा, मुजफरपुर**

किया है। उसके समय में भारतीय व्यापार अत्यन्त विकसित था। दूर–दूर के व्यापारी नगरों में आकर क्रय–विक्रय करते थे तथा वे अपने माल सुदूर प्रदेशों तक भेजते थे। उस समय भी भिन्न–भिन्न व्यापारिक संगठन थे जो व्यापारियों के हित के कार्य किया करते थे। उस समय के लेखों से 'हट्टपति', 'शौल्किक', 'तारिक' आदि विभिन्न राज–पदाधिकारियों का संकेत मिलता है। हट्ट (बाजार) में विभिन्न स्थान के व्यापारी आकर इकट्ठे होते थे, जहाँ मार्ग के दोनों ओर दूकानें होती थी, विभिन्न वस्तुएँ सजाकर रखी रहती थी और वहाँ क्रय–विक्रय का सिलसिला बना रहता था। अनेक पशु भी विक्रय हेतु नगरों में लाए जाते थे।[7] मधुए मछलियाँ पकड़ते थे, जिनको बाजार में लाकर बेचते थे।[8] कश्मीर और सिन्ध के लोग घोड़ो और गायों का व्यापार करते थे।[9] कामरूप और कलिंग के जंगलो से हाथी पकड़कर लाये जाते थे।[10] दामोदरपुर–ताम्रपत्र में उल्लिखित है कि बाजार के निमित भूमि का क्रय किया गया था।[11] 'हट्ट' पर लगनेवाला कर 'हट्टिका' कहा जाता था। प्रायः वैश्य वर्ण के लोग ही विभिन्न वस्तुओं के व्यापार के लिए नगरों आदि के बाजार में सम्मिलित होते थे।[12] श्वानच्वांग ने लिखा है कि नगर में सड़को के दोनों ओर दूकाने रहती थी; जहाँ लोग अपने आवश्यकतानुसार वस्तुओं की खरीद–बिक्री करते थे।[13] थानेश्वर आदि विभिन्न नगरों के व्यापारी दूसरे देशो के सामान एकत्र कर बेचते थे।[14] वाण के अनुसार भी थानेश्वर नगरी अपनी विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध थी। वह लिखता है कि थानेश्वर नगरी 'अर्थियों के लिए चिन्तामणि भूमि' और 'व्यापारियों' के लिए लाल भूमि थी।[15] थानेश्वर की प्रसिद्धि का प्रधान कारण उसका व्यापारिक केन्द्र होना भी था। उसकी समृद्धि और सम्पतिशालिता का उल्लेख श्वानच्वांग ने भी किया है।[16] वहाँ के निवासी अधिकतर व्यापारी थे, जो विभिन्न वस्तुओं का व्यापार करते थे।[17] मथुरा के स्निग्ध और धारीयुक्त वस्त्रो की मांग सर्वत्र होती थी। वाराणसी के लोग व्यापार के कारण ही अत्यधिक धनी थे तथा उनके निवास बहुमूल्य पदाथों से भरे रहते थे।[18] कान्यकुब्ज जनपद तो दुर्लभ वस्तुओ के लिए प्रख्यात था, जो दूरवर्ती प्रदेशों के व्यापारियों से क्रय किये जाते थे।[19] अयोध्या–निवासी विविध शिल्पो में अग्रणी थे।[20]

1. धातु शिल्प – प्राचीन काल से भारत की भूमि के गर्भ में खनिज पदार्थों की कमी नहीं है। वृहतसंहिता एवं अमरकोश में सोना, लोहा और खान की चर्चा आयी है। चांदी की चर्चा नहीं की गयी है। इसके अतिरिक्त भी ताँबा, पीतल, सीसा का वर्णन मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लौह उधोग में गुप्त काल प्रगति के पथ पर था और लोहार समुदाय के लोग विभिन्न औजारो का निर्माण करते थे, उनके द्वारा हथौड़े, छेनी, ताला, कुठार, कटार, कुल्हाड़ी और बर्तन बनाने का काम होता था। मेहरौली में जो लोहे का स्तम्भ विराजमान है उसका वनज 6 टन से

अधिक है तथा लम्बाई 28 फीट है। ये पेशेवर वाली जातियाँ विभिन्न हथियारो एवं कृषि जनित औजारो का निर्माण करते थे। आज भी जातीय–आधार पर लोहार जाति के लोग अच्छी–खासी संख्या में इस कार्य में दत–चित है।

2. स्वर्ण एवं रत्न उद्योग – गुप्त काल में स्वर्ण उद्योग प्रगति की पराकाष्ठा पर था। ऐसी बात नही की सम्पन्न घर की महिलाएँ ही स्वर्ण आभुषण पहनती थी बल्कि बहुमुल्य धातु होने के बावजूद इसका उपयोग बड़े पैमाने पर महिलाओ के साथ–साथ पुरूष वर्ग भी करते थे। सोनार जाति के लोग स्वर्ण कला में प्रवीण थे और नये–नये किस्म के गहने विकसित करते थे। जो एक कुशल शिल्पी का काम होता है। गुप्त काल के इन शिल्पीयों से संबंधित तथ्य तत्कालीन साहित्य में वर्णित है। ''जौहरियों का अर्ध–रत्नों के कारीगरों का व्यवसाय भी खूब फूल–फल रहा था। जौहरियों की कला काफी उन्नत अवस्था में पहुंच चुकी थी और ऐसे कई प्रकार के रत्नों के उल्लेख है, जिसकी सावधानी से परख की जाती थी और उनका आभूषणों तथा सजावट की वस्तु के रूप में उपयोग किया जाता था। जौहरियों की दूकानों के कारीगर, मोतियों, मानको और सूर्यकांत (जैस्पर), गोमेद (एगेट), इंद्रगोप (कार्नीलियन) स्फटिको (क्वार्ट्ज) और लाजवर्द (लेपिस–लेजुली) जैसे अर्ध–रत्नों का काम भी करते थे। दक्षिण भारत अपने रेशम उद्योग रत्नों और मोतियों के लिए प्रसिद्ध था जो बहुत, संभवतः श्रीलंका से आते थे। साहित्य में उत्कीर्ण लेखों में भी विभिन्न प्रकार के रत्नों की लंबी सूचियाँ सुरक्षित है। तंजोर मंदिर के उत्कीर्ण लेख में तो हीरों, लालमणियों, मोतियों आदि की अनेक किस्मों में भेद किया गया है। मणिपरीक्षण रत्नों का विशेषज्ञ होता था और वह असली तथा नकली रत्नों की पहचान करते हुए उनके दोषों को बता सकता था। कुशल सुनार भी अपनी कला में प्रवीण होता था और वह अनेक लोगों की रूचियों की वस्तु तैयार कर सकता था। धोकनियों की सहायता से और रासायनिक पदार्थो के प्रयोग द्वारा स्वर्ण को शुद्ध करने की प्रक्रिया से अनुमान होता है कि खनिज रूप में प्राप्त पीली धातु से आभूषण बनाने की प्रविधि काफी उन्नत हो चुकी थी। कुशल कलाओं में विशेषज्ञता की ओर प्रवृत्ति सुनिश्चित रूप से विद्यमान थी। इस प्रकार, हाथीदांत का काम करने वाले (चुंद) और हाथी दांत पर नक्काशी करनेवाले (दंतकार), ये दोनों अलग–अलग पेशे थे इसी प्रकार स्वर्ण, रजत ओर ताम्र के आभूषण बनाने वालों के भी पेशे अलग–अलग थे। हाथी दांत के उद्योग का प्रसिद्ध केन्द्र था विदिशा, आधुनिक भिलसा जो सांची(मध्य प्रदेश)के निकट है।[21]

सोना, चाँदी, शीशा, टिन, ताँबा, पीतल, लोहा और रत्न के काम वाले आठ शिल्प थे। पीतल, जस्ते, सुरमा और लाल शंखिया के कई प्रभेदों का उल्लेख है। इससे खान और धातु के कौशल में भारी प्रगति और विशेषीकरण का पता चलता

हैं लोहा बनाने के तकनीकी ज्ञान में भारी प्रगति हुई। अनेक उत्खनन स्थलों पर कुषाण और सातवाहन कालीन स्तरों में लौहशिल्प की वस्तुएँ अधिकाधिक संख्या में मिली है। परंतु इस विषय में आंध्र प्रदेश का तेलंगाना सबसे समृद्ध प्रतीत होता है। इस क्षेत्र में करीमनगर और नालगोंड जिलों में हथियारों के अलावा तराजू की डंडी, मूठवाले, फावड़े और कुल्हाड़ियों, हँसिया,फाल उस्तराऔर करछुल आदि लोहे की वस्तुएँ मिली है।छुरी–काँटे सहित भारतीय लोहे और इस्पात का निर्यात अबीसीनियाई बंदरगाहों को किया जाता था और पश्चिम एशिया में उनकी भारी प्रतिष्ठा थी। लोहा, सोना के अतिरिक्त पीतल, ताँबा और काँसा से भी विभिन्न प्रकार के बर्तन निर्मित होते थे; ऐसी चर्चा आयी है कि सोनार से भिन्न पीतल, ताँबा और काँसा बर्तन बनाने वाले शिल्पी एक अलग श्रेणी के थे। ताँबे की चादर पर उस काल के अभिलेख मिले हैं और ताँबे की मुहरें भी मिली है; इसके साथ ही बुद्ध की मूर्ति कांसे की और तांबे से निर्मित भी उपलब्ध है। अतः हम कह सकते हैं कि पीतल,ताँबा और कांसा के शिल्पी भी गुप्त काल में मौजूद थे।

हीरा, मोती, मूँगा, पन्ना, सीप सदृश बहुमूल्य रत्न गुप्त काल में उपलब्ध थे और इन रत्नों से आभूषणों का निर्माण बड़े पैमाने पर होता था। जिसकी चर्चा महाकवि कालिदास ने भी की है। मोती की मालाओं का उपयोग भी लोग करते थे और इसे भी शिल्पी बड़ी चतुराई से बनाते थे।

3. कुम्भकार – मिट्टी से विभिन्न प्रकार के बर्तनों को बनाने का काम उस काल में हो रहा था। इस मृदभाण्ड निर्माण में तत्कालीन समाज का कुम्भकार वर्ग दक्ष था; उत्खनन से प्राप्त बर्तन में धूप–दानी, कलश सुराही आदि वस्तुएँ मिली है। इन वस्तुओं पर चित्रकारी भी की गई और इसका रंग लाल है। मिट्टी निर्मित खिलौने और मूर्तियाँ भी प्राप्त हुयी है। ऐसा अनुमान है कि गुप्तकाल में कुम्भकार विभिन्न आवश्यकताओं के अनुरूप बर्तन पर खिलौनों का निर्माण करते थे।

4. पाषाण – गुप्तकाल में पत्थर से निर्मित कतिपय मन्दिर प्राप्त हुये हैं; जिनमे विष्णु मंदिर, शिव मंदिर, पार्वती मंदिर तथा दशावतार मंदिर महत्वपूर्ण है। इन मंदिरों के अवलोकन से उस काल की कला का हमें विस्तृत ज्ञान होता है;

5. चर्म उद्योग – गुप्तकाल में चर्म उद्योग भी प्रगति के शिखर पर था। पशु चर्म यथा हिरण, चीता एवं विभिन्न जानवरों के चमड़े से जूता, बोतल एवं अन्य जीवनापयोगी सामनों का निर्माण चर्मकार करते थे। चीते की छाल का उपयेाग ऋषि ,मुनी ,ज्ञानी तपस्वी लोग तप काल में आसानी के रूप में इस्तेमाल करते थे और मृग की नाभी से कस्तुरी निकालने में भी ये चर्मकार पारंगत थे। इसके साथ ही हाथी के दाँत से होती कतिपय प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ बनायी जाती थी।

6. बढ़ई (काष्ट उद्योग) – तत्कालीन समाज में बढ़ई थे और बढ़ईगिरी का काम व्यापक पैमाने पर हो रहा था। कामसूत्र के अध्याय 3 पृष्ट 23 पर कहा गया है कि काष्ट उद्योग का स्थान 64 कलाओं में स्थान रखता था। इसी प्रकार चर्चा आयी है कि कुर्सी, लकड़ी की मूर्ति, बेंत की टोकरी एवं बांस से बहुतेरे वस्तुएँ बनायी जाती थी। जिसका उपयेाग तत्कालीन समाज के लिए काफी आवश्यक था। इस तरह बढ़ई मकान निर्माण, कुर्सी निर्माण, रथ निर्माण और टोकरी निर्माण में माहिर थे।

7. वस्त्र उद्योग– गुप्तकाल में वस्त्र उद्योग का चतुर्दिक विकास हुआ था। मोटे से लेकर महीन वस्त्रों का निर्माण बड़े पैमाने पर होता था। संपन्न लोग महीन वस्त्र का उपयोग करते थे और गरीब मोटे वस्त्र का समियाना तंबू टाइप की वस्तुओं के निर्माण में मोटे कपड़े का इस्तेमाल होता था। उस काल के ज्ञानी तपस्वी लोग प्रायः वल्यकल, चीता के चर्म तथावस्त्र का भी उपयोग करते थे। संपन्नता उस काल की ऐसी थी कि सम्पन्न परिवार के लोग खास कर औरते रेशमी वस्त्रों को उपयेाग पहनावा में करती थी। रेशमी वस्त्रों पर हंस चित्रित किय जाता था। जिससे उस वस्त्र के सौंदर्य में चार चाँद लग जाता था। लीट के अनुसार मन्दसौर के अभिलेख में चर्चा आयी है कि उस काल में जुलाहे भी थे जो रेशमी वस्त्र निर्माण में प्रवीण थे। रेशमी वस्त्र निर्माण में विधिवत एक सुसंगठित श्रेणी थी। रेशमी वस्त्र निर्माण के अतिरिक्त ऊनी कपड़े और कम्बल निर्माण की भी चर्चा आयी है। कालिदास कृत कुमार संभवम् के पृष्ट 5 और 30 पर चर्चा आयी है कि कपड़े पर रंग भी चढ़ाये जाते थे और चित्र भी बनाये जाते थे। इस तरह वस्त्र उद्योग काफी विकसित था।

बाण ने हर्ष चरित में लिख है कि राज्यश्री के विवाह के समय क्षुमा,रूई, दुकुल (छाल का रेशम), लालातन्तु, मलमल (अंशुक) और नेत्र–रेशम के वस्त्र बनाए थे ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि भारत में, रेशम, रूई, क्षुमा और ऊन के कपड़े बनाये जाते थे। हर्षचरित में रंगीन वस्त्र और फूलदार रेशम का उल्लेख है। शान्तिदेव के शिक्षा समुच्चय से हमें ज्ञात होता है कि इस समय भी वाराणसी श्रेष्ठ रेशम के लिए प्रसिद्ध था। पुण्ड्रदेश का क्षुमा का कपड़ा श्रेष्ठ माना जाता था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि मथुरा में बढ़िया किस्म का धारीदार सूती कपड़ा बनता था। उसी ने लिखा है कि कश्मीर में सफेद लिनन बनाई जाती थी। हर्ष चरित से ज्ञात होता है कि इस काल में कामरूप में भी बढ़िया कपड़ा बनाया जाता था। वहाँ के शासक ने रेशम, क्षुमा से बनाया कपड़ा और छींटदार कपड़े हर्ष को उपहार में भेजे थे। अरबयात्री सुलेमान ने बंगाल की मलमल के संबंध में लिखा है कि यह इतनी महीन होती थी कि अंगूठी के बीच से पूरा थान निकल सकता था। इब्न खुर्ददवाह ने भी बंगाल

के कपड़े की प्रशंसा की है। अलइदरिसी ने मुल्तान को वस्त्रोद्योग का केन्द्र बतलाया है। मानसोल्लास के अनुसार मुल्तान, गुजरात और कलिंग में बहुत अच्छा कपड़ा बनाया जाता था। किन्तु अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि कोकंण प्रदेश मालवा और मदुरा भी वस्त्रोद्योग के केन्द्र थे। भड़ोच के बने हुए वस्त्र इतने प्रसिद्ध थे कि वे 'वरोज' नाम से प्रसिद्ध थे। खंभात में बना कपड़ा 'खंबायात' कहलाता था। मध्य देश 'चुनरी' के लिए प्रसिद्ध था। चाउजुकुआ के अनुसार गुजरात में छींट बनाई जाती थी। उसी के अनुसार मलाबार मे। छींट और सफेद सूती कपड़ा बनाया जाता था। मार्कोपोलो ने लिखा है कि चोल राज्य में भी सूती व रंगीन रेशम के वस्त्र बनतेथे। इब्नसईद ने लिखा है कि पाण्ड्य राज्य से रंगीन रेशम या सूती कपड़ा, विदेशों को भेजा जाता था। मार्कोपोलो ने ही लिखा कि वारंगल में बढ़िया सूती कपड़े बनाए जाते थे। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि देश के विभिन्न भागों में वस्त्र उद्योग उन्नत दशा में था।[22]

8. तैल एवं सुगंध उद्योग– महाकवि कालिदास कृत कुमार संभवम, रघुवंशम एवं शकुन्तलम से ज्ञात होता है कि गुप्त काल में सुगंधित इत्र एवं विविा प्रकार के तैल तैयार किये जाते थे। जिसका उपयेाग भोजन, श्रृंगार और दवा के रूप में किया जाता था। सरसों एवं तिल का तैल खाद्य पदार्थ एवं शरीर में लगाने के काम में आता था तो घाव एवं दीपक जलाने में इन्गुदी के तेल का व्यवहार होता था। महिलाएँ आज जिस लिपिस्टिक से ओठ रंगती है और पैरों में अलता लगाती है उस तरह की लगाने वाली वस्तुएँ और सुगंधित इत्र का निर्माण गुप्त काल में होता था। जिसकी चर्चा कालिदास के साहित्य में की गयी है। शुक्लागुरू हरिचन्दन, हरिताल, धूप एवं कुमकुम बनाये जाते थे, जिन्हें ओठ ओर पैर रंगने के काम में लाया जाता था। चन्दन का लेप भी बदन पर करने की परिपाटी थी। शकुन्तलम एवं कुमारसंभवम से ज्ञात होता है कि पुरूष एवं महिलाएँ शराब सेवन करते थे और इस सेवन में उनका तर्क था कि शारीरिक सौंदर्य वृद्धि के लिए यह आवश्यक है।

9. मछुआरे – जलाशयों से मछली पकड़ने का काम मछुआरे करते थे।

10. बूचर –मांस के दूकाने भी उस काल में थी और पशु वद्य हो रहा था।

11. शिकारी – गुप्त काल में दो प्रकार के शिकारी थे जिसमें एक वह था जो जंगलो में रहकर पशु–पक्षियों का शिकार करता था और दूसरा कुलीन वर्ग के लोग थे जो शिकारी प्रवृति के थे।

12. हलवाई और रसोईया–तरह–तरह के खाद्य पदार्थ एवं भोजनादी बनाने का काम करते थे।

13. नाई तथा प्रसाधक–बाल बनाने एवं सौदर्य निखारने का काम करने वाला।

14. जहाज चलाने वाला – नदी एवं समुद्र में व्यापारिक कार्यो के लिए जहाज चलाने वाले भी थे।

15. रस्सी बाँटने वाले एवं टोकरी बनाने वाले।

16. चित्रकार आदि।

संदर्भ सूची :

1. रधुवंश, 16.41; मालविकाग्निमित्र, पृ0 33, 801
2. रधुवंश, 14.33;
3. लीट–गुप्त इन्सक्रीएसन्स पृ0–6
4. रधुवंश, 19.30
5. अमरकोश, 2.20
6. रधुवंश, 14.30
7. वाटर्स, 1, पृ0 300; 2, पृ0 252
8. वही, 1, पृ0 178
9. वही, पृ0 261
10. वही, 2, पृ0 186, 198
11. इपि, इ0, 15, 133
12. वाटर्स, 1, पृ0 168
13. बील, 2, पृ0 205
14. वाटर्स, 1, पृ0 315
15. हर्षचरित, संर्ग 3
16. वाटर्स, 1, पृ0 314
17. वही, 2, पृ0 47
18. वही, 2, पृ0 47
19. वही, पृ0 314
20. वही, पृ0 365
21. पी0एन0 चौपड़ा, बी0 एन0 पुरी, एम0 एन0 दास– भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ0 129–30
    राम शरण शर्मा– प्रारंभिक भारत का परिचय, पृ0 224–2528. ओम प्रकाश–प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ0 95
22. ओम प्रकाश–प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ0 95